केंद्र सरकार की एक योजना ने बदल दी कश्मीरी महिलाओं की तक़दीर

सालों से औलाद के सुख को तरस रहीं मरियम और उनके पति मुहम्मद अशरफ डार को 2007 में उम्मीद की एक किरण नज़र आई थी. तब जब डॉक्टर ने कहा था कि अशरफ का ऑपरेशन हो जाने से उन्हें बच्चा हो सकता है. लेकिन बहुत कोशिशों के बाद भी वे ऑपरेशन के लिए सात हज़ार रुपये नहीं जोड़ पाए.

कश्मीर घाटी में बांदीपोरा जिले के सुमबल इलाके में रहने वाली मरियम नहीं चाहतीं कि कोई उनकी तरह बेऔलाद जिये. सत्याग्रह से बातचीत में वे कहती हैं, 'तब मैं अपने लिए सात हजार रु नहीं जोड़ पाई, पर यकीन मानें, आज ऐसे किसी भी जरूरतमंद जोड़े के लिए लाखों का इंतजाम कर सकती हूं और वो भी कुछ ही दिनों में.'

बदला क्या है ? यह सुनकर यही सवाल मन में उठता है. शायद मरियम के पास अब बहुत पैसा आ गया होगा. पैसा यकीनन आ गया है, लेकिन इतना नहीं कि लोगों को दान कर सकें. असल में हुआ यह है कि भारत सरकार की एक योजना ने मरियम और सुमबल इलाक़े में उनकी जैसी हजारों महिलाओं की जिंदगियां बदल दी हैं. यह योजना है राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम) -जिसे आजीविका या दीनदयाल उपाध्याय अंत्योदय योजना भी कहा जाता है.

2011 में शुरू हुई यह योजना ग्रामीण विकास मंत्रालय की एक पहल है. विश्व बैंक द्वारा समर्थित यह देशव्यापी योजना भारत सरकार ने ग्रामीण गरीबों की घरेलू आय और स्थायी आजीविका बढ़ाने के मकसद से शुरू की थी. सुमबल में इसने हजारों परिवारों खास तौर पर महिलाओं की ज़िंदगियां बदल दी है – आर्थिक रूप से भी और सामाजिक स्थिति बेहतर करने के लिहाज से भी.

सुमबल के नौगाम गांव में रहने वाली जैतूना भुट्टो कहती हैं, 'रोजगार तो ज़ाहिर है बढ़ा है, लेकिन साथ-साथ हम औरतों को अब कम से कम हमारे इलाक़े में एक अलग नज़रिये से देखा जाता है.' उनका कहना है कि आमदनी तो नियमित हुई ही है, समाज में उनकी इज्ज़त भी बढ़ गयी है और जहां पहले औरतों को सामाजिक मुद्दों में दखलंदाजी से रोका जाता था अब वहीं गांव के मर्द उनसे मशविरा किए बगैर कोई काम नहीं करते.

image.png

अस्थिरता से जूझ रहे कश्मीर में सुमबल इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यह कश्मीर का सबसे पिछड़ा हुआ इलाका है. 2014 में आई बाढ़ ने इस इलाक़े को और पीछे धकेल दिया था. हालत यह है कि अभी-भी यानी बाढ़ के पांच साल बाद इस इलाक़े के कई गांवों में बाढ़ का पानी जमा है. ऐसे में यह योजना यहां के लोगों के लिए एक नयी उम्मीद बनकर आई है. सतह से थोड़ा नीचे लोगों के बीच जाएं तो पता चलता है कि बदलाव बहुत गहरा है और शायद स्थायी भी.

उम्मीद की डोर महिलाओं के हाथ में ही है

सत्याग्रह ने सुमबल के कई गांवों में तीन दिन तक ऐसी कई महिलाओं से बात की. हमने समझने की कोशिश की कि यह बदलाव कैसे मुमकिन हुआ है. लेकिन इससे पहले इन महिलाओं के बारे में बात हो, ज़रूरी है कि इस योजना के बारे में थोड़ी बात की जाए.

बेहतरी की 'उम्मीद'

कश्मीर में यह योजना 'उम्मीद' नाम से चलाई जा रही है. देश के अन्य हिस्सों में तो यह 2011 से ही चल रही थी, लेकिन कश्मीर घाटी में यह 2014 में लागू हुई. सुमबल शायद पहला ब्लॉक था जहां यह योजना लोगों के बीच लाई गई. उस साल आंध्र प्रदेश से ऐसी महिलाएं सुमबल आईं जो इस योजना का लाभ उठा चुकी थीं. शीलवत गांव की शाइस्ता हसन बताती हैं, 'इन्हीं औरतों ने अपनी टूटी-फूटी हिंदी में हमें इसके बारे में समझाया.'

शुरू-शुरू में शाइस्ता जैसी कुछ औरतों ने आगे कदम बढ़ाया था लेकिन ज्यादातर औरतें 'मान-मर्यादा' के चलते इस योजना से दूर ही थीं. शाइस्ता बताती हैं, 'लेकिन जब बाढ़ ने कोहराम मचाया तो यहां की औरतों को एक ही रास्ता नजर आया और वो थी यह योजना.' धीरे-धीरे 'उम्मीद' से जुड़ने वाली महिलाओं की संख्या बढ़ने लगी और इस समय सिर्फ सुमबल ब्लॉक में 4500 महिलाएं इस योजना का लाभ उठा रही हैं.

इस योजना में 10 औरतों का एक स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) बनता है. पहले तीन महीने तक हर हफ्ते सबको अपनी जेब से 25-25 रुपये जमा कराने होते हैं. सुमबल में 'उम्मीद' के ब्लॉक प्रोग्राम मैनेजर आदिल रशीद बताते हैं, 'ये इन औरतों में बचत और एक ज़िम्मेदारी का एहसास दिलाने के लिए किया जाता है. तीन महीने बाद इनको 15000 रुपये मिलते हैं, और यही औरतें तय करती हैं कि किसको कितने पैसे की ज़रूरत है. कर्जे की किस्त भी यही तय करती हैं.' उनके मुताबिक इन महिलाओं को दूसरी किस्त 25 हजार रुपये की मिलती है और यह पैसा वापस भी आता है तो इन्हीं समूहों में घूमता रहता है.

आदिल बताते हैं, 'ये लोग यह पैसा काम-धंधे में लगाकर किस्तों के अलावा भी हर हफ्ते एक खास रकम (जो दो से तीन सौ रुपये तक होती है) जमा करते रहते हैं.' जमा की गई यही रकम सुमबल ब्लॉक में इस समय दो करोड़ से ऊपर की है. और ये दो करोड़ सुमबल की सिर्फ 16 ग्राम पंचायतों में चल रहे 450 एसएचजी की जमा की हुई है. आदिल कहते हैं, 'यह पैसा इन्हीं औरतों का है और आपस में चर्चा करके यही तय करती हैं किसको कितने की ज़रूरत है.'

मरियम भी इसी पैसे की बात कर रही थीं, जब उन्होंने कहा कि वे लाखों का इंतजाम कर सकती हैं, क्योंकि यह इन्हीं महिलाओं पर निर्भर करता है कि वे पैसा कहां लगाना चाहती हैं. सत्याग्रह से बातचीत में वे कहती हैं, 'कुछ समय पहले ही एक पड़ोसी का बच्चा बीमार था और उसको हम लोगों ने 10 हज़ार का लोन दिया था बच्चे के इलाज के लिए.'

आदिल बताते हैं, 'जमा किए गए इन पैसों में से ही इन औरतों के चुने गए प्रतिनिधियों को तनख्वाह

मिलती है. इन प्रतिनिधियों में कम्यूनिटी ट्रेनर, कम्यूनिटी मोबिलाइज़र और क्लस्टर कोऑर्डिनेटर शामिल हैं जिन्हें 1500 से 8000 रु तक की तनख्वाह दी जाती है.'

सरकार से पैसे मिलने के बाद इन औरतों को बैंकों से भी लोन आसानी से मिल जाता है. आदिल जानकारी देते हैं, 'इन महिलाओं में से ज़्यादातर ने कर्जे लिए हुए हैं और ये कर्जे आसानी से चुका देती हैं क्योंकि पहले तीन महीने में इन लोगों को इस चीज़ की भरपूर ट्रेनिंग मिल गई होती है.' सत्याग्रह ने सुमबल इलाक़े में जम्मू-कश्मीर बैंक के एक कर्मचारी से भी बात की. उन्होंने बताया कि एक यही लोन है जो बैंक में आंखें मूंदकर दिया जाता है. उनका कहना था, 'इनमें से कोई भी डिफॉल्टर नहीं है.'

अब सवाल उठता है कि इन थोड़े से पैसों ने इन परिवारों की ज़िंदगियां कैसे बदली हैं.

मरियम के पति लोड कैरियर चलाकर घर चलाते थे. 2014 की बाढ़ में घर के साथ-साथ उनका लोड कैरियर भी खराब हो गया था. मरियम कहती हैं, 'ऐसा लगता था कि अब ज़िंदगी में कुछ नहीं बचा है जीने के लिए. और फिर जैसे किसी ने उम्मीद से जोड़ दिया.' मरियम ने अपने एसएचजी से एक छोटा-सा लोन लेकर एक किराने की दुकान खोल ली. काम शुरू होकर बढता गया और उनके मुताबिक इस समय दुकान में कम से कम छह लाख रुपये का स्टॉक है. मरियम बताती हैं, 'पति को भी नया लोड कैरियर दिला दिया. अब ज़िंदगी ठीक-ठाक कट रही है. लेकिन चाहती हूं कि और लोगों के लिए कुछ करती रहूं.'

नौगाम में, जहां मरियम रहती हैं, करीब दो दर्जन महिलाओं ने हमें अपने अनुभव बताए. जैसे 40 साल की हाजरा जिन्होंने ऐसा समय भी देखा है जब उनके घर में खाने के लिए कुछ नहीं था. हाजरा के पति बशीर अहमद बीमार हैं और उनका एक बेटा भी. दवाइयों में हर महीने उनके तीन-चार हज़ार रुपये से ज़्यादा पैसे लग जाते हैं. हाजरा बताती हैं, 'एक वक़्त ऐसा आया कि मैंने ने अपनी बेटी का स्कूल छुड़ाकर उसको सिलाई-कढ़ाई का काम सौंप दिया. उसका स्कूल छुड़ाकर मुझे ऐसा लगा था कि भीतर से मैं मर गई, लेकिन कोई और चारा भी नहीं था.'

फिर हाजरा ने 2015 में 'उम्मीद का गुलिस्तान' नाम का एक एसएचजी जॉइन किया और 10 हज़ार रुपये का लोन लेकर एक बकरी खरीद ली. वे बताती हैं, 'उसको कुछ समय बाद 16 हज़ार रुपये में बेचकर एक गाय खरीद ली, जिसका दूध बेचकर मैं घर चलाने लगी.' इस समय एक गाय मर जाने के बावजूद, हाजरा के पास दो गाय और हैं. बच्चे भी वापस स्कूल जाने लगे हैं और वे अपने पति और बेटे का इलाज भी सही ढंग से करा पा रही हैं.

हैरानी की बात यह है कि इनमें से ज़्यादातर महिलाएं अनपढ़ हैं और इस समय अलग-अलग कामों के जरिये अपने परिवारों को धीरे-धीरे ग़रीबी से बाहर निकाल रही हैं. यहां कोई महिला डेयरी चला रही है, कोई रेशम के कीड़े का पालन कर रही है, कोई पेपर माशी का काम, कोई कालीन बुन रही है तो कोई स्वेटर. आदिल कहते हैं, 'यह गजब है कि एक छोटी-सी पहल, एक छोटी-सी योजना कैसे हजारों लोगों को गरीबी से बाहर निकाल रही है. मैं रोज़ देखता हूं और रोज़ हैरान होता हूं.'

लेकिन यह योजना सिर्फ लोगों को गरीबी से बाहर नहीं निकाल रही, बल्कि कुछ लड़कियों के ख्वाब भी

पूरे कर रही है. सुमबल के टेंगपोरा गांव में रह रहीं फातिमा मजीद इसका एक अच्छा उदाहरण हैं. फातिमा एक सरकारी मुलाजिम की चार बेटियों में सबसे बड़ी बेटी हैं और पोस्ट ग्रेजुएशन करने के बाद उनका सिर्फ यही सपना था कि वे आर्थिक रूप से अपने पिता की मदद कर सकें. फातिमा कहती हैं, 'ज़्यादा पैसा न होने के बावजूद भी हमारे पिता ने हम बहनों की पढ़ाई में कोई कमी नहीं छोड़ी. मेरा सपना था कि में उनके बेटे की कमी पूरी कर सकूं'.

फातिमा आगे बताती हैं कि उन्हें जब उम्मीद के बारे में पता चला तो उन्होंने भी एक एसएचजी बना लिया और अब तक वे यहां से डेढ़ लाख रुपये का कर्ज़ ले चुकी हैं. फातिमा ठीक अपने घर के बाहर एक कॉस्मेटिक्स की दुकान चलाती हैं. वे कहती हैं, 'मैंने अपनी इस दुकान की शुरुआत कुछ हज़ार रुपये से की थी और इस समय यहां कम से कम 10 लाख का माल पड़ा होगा. और यह सिर्फ 2015 से लेकर अब तक हुआ है.' फातिमा साथ-साथ पढ़ाई भी कर रही हैं और खुश हैं कि वे अपने पिता बोझ हल्का करते हुए अपनी पढ़ाई का खर्चा भी खुद ही निकाल रही हैं. फातिमा के मुताबिक, 'मैं कोई बहुत गरीब परिवार से तो नहीं थी, लेकिन यह जरूर कहूंगी कि इस योजना ने के चलते मुझे अपने सपने पूरे करने में बहुत आसानी हो गई.'

दिलचस्प बात यह भी है कि यह योजना सिर्फ आर्थिक रूप से इन औरतों कि मदद नहीं कर रही बल्कि इसकी बदौलत उन्हें सामाजिक मजबूती भी मिल रही है. शीलवत गांव में रहने वाली पोशा के पति कोई काम-धंधा नहीं करते थे. थोड़ी-बहुत खेती से घर चलता था. लेकिन 'मर्द मर्द होता है' और कुछ न करने के बावजूद भी घर के फैसले वही लेता है ! पोशा उस समय के अपने घर-परिवार की बदहाली के बारे में बताती हैं, 'हम खुले में शौच के लिए जाते थे. बच्चों की फीस भरने तक के पैसे नहीं थे हमारे पास.' लेकिन फिर वे 2015 में एक एसएचजी से जुड़ गयीं. उनकी हालत देखकर बाक़ी सदस्यों ने पहला लोन उनको दिया. पोशा ने इन पैसों से कालीन बुनने का समान खरीदा और अपनी बेटी के लिए पशमीना का काम ले आयीं. इसके बाद उनकी माली हालत लगातार सुधरी. वे बताती हैं, 'मैंने पिछले तीन सालों में एक लाख से ऊपर का कर्जा लिया था और इसका बड़ा हिस्सा मैं वापस कर चुकी हूं.' इन्हीं सालों में पोशा ने घर की मरम्मत भी करवा ली और घर में एक शौचालय भी बनवा लिया.

ज़ाहिर है कि इसके बाद घर-परिवार में पोशा की स्थिति भी बदल गई. 'आज मेरे पति मेरी मंजूरी के बगैर कोई काम नहीं करते. यहां तक कि पड़ोस के मर्द भी मुझसे सलाह मांगने आते हैं' 45 साल की पोशा, जो बिलकुल अनपढ़ हैं, शरमाते हुए ये सब बातें कहती हैं.

पोशा के लिए जहां अपने घर में मान-सम्मान हासिल करना एक उपलब्धि थी, वहीं 27 साल की अस्मत हसन के लिए समाज में जगह बनाना एक जीत. अस्मत ने दसवीं के बाद स्कूल छोड़ दिया था और घर बैठी हुई थीं लेकिन फिर 'उम्मीद' से जुड़ीं तो उनकी दुनिया ही बदल गई. सत्याग्रह से बात करते हुए वे कहती हैं, 'मुझे यकीन नहीं होता कि आज मैं बैंक जाकर फॉर्म भरती हूं, दस्तखत करती हूं और बैंक के कर्मचारियों से बात कर पाती हूं. यह सब मेरे लिए एक सपने जैसा है.'

अस्मत के लिए रास्ते ऐसे खुले कि जब कश्मीर में चल रहे 'मिल्क कोऑपरेटिव' ने उनके गांव में ऑटोमेटिक कलेक्शन सेंटर खोला तो उन्हें वहां की देखरेख का जिम्मा दिया गया. अस्मत बताती हैं,

‘वहां मैं गांव वालों से दूध इकट्ठा करती हूं. कम्प्यूटर के जरिए उसे जांचती हूं और उसका हिसाब रखती हूं. यह काम करते हुए मुझे लगता है जैसे मेरा नया जन्म हुआ है.’

इन गांवों में मर्द भी अब यह मानने लगे हैं कि औरतें सिर्फ घर संभालने के लिए नहीं होतीं और वे मर्दों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सकती हैं. ‘अगर किसी को कोई शक था तो वो अभी कुछ दिन पहले दूर हो गया’ उम्मीद से जुड़ीं मुबीना के पति अली यह बात कहते हैं. उन्होंने पिछले दिनों सरकारी कार्यक्रम ‘बैक टू विलेज’ से जुड़ी एक बैठक के बारे में चर्चा करते हुए हमें बताया, ‘वहां सभी ग्रामीण थे लेकिन बोल सिर्फ औरतें रही थीं. उन्होंने न सिर्फ अधिकारियों से हमें मिलवाया बल्कि हमें सलाह भी देती रहीं और जरूरी सवालात भी करती रहीं. वे सवाल जो हम मर्दों को पता भी नहीं थे.’

साभार- https://satyagrah.scroll.in/ से